Sanvahak, Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec.) 2025 : PP-43-47

Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Multidisciplinary (All Subjects) & Multilingual (All Languages) Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)
Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec,) 2025
Page No.- 43-47
©2025 **Sanvahak**
https:// sanvahak.gyanvividha.com
Author's :

सरोज रानी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला.

Corresponding Author :

सरोज रानी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला.

गुरु गोरखनाथ के नैतिक उपदेश: एक विवेचन

भारतीय जीवन में संचरित होने वाली आध्यात्मिक प्रवृत्ति वैदिककाल से ही अबाध्यगति से प्रवाहित होती रही है। प्रत्येक विचारधारा अपने युग और परिस्थितियों के अनुसार विकास करती है और नवीन रुप ग्रहण करती है। उन्ही परिस्थितियों के कारण आए परिवर्तन का प्रभाव उस समय के मानव मन पर पड़ना स्वाभाविक है। इसी परिवर्तन के प्रभाव से बौद्ध धर्म में मन्त्रयान, मन्त्रयान का वज्रयान में, वज्रयान का सहजयान में और सहजयान का नाथ संप्रदाय में विकास हुआ। हिन्दी शब्दकोश में नाथ का अर्थ स्वामी, प्रभु, अधिपति मालिक, गोरखपंथी संप्रदाय आदि से लिया गया है। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- " 'ना' का अर्थ 'अनादि' रुप और 'थ' का अर्थ है(भुवनत्रय का) 'स्थापित होना', इस प्रकार नाथ मत का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है जो भुवनत्रय का स्थिति का कारण है। श्री गोरक्ष को इसी कारण से नाथ कहा जाता है। फिर 'ना' शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म जो मोक्ष-दान में दक्ष है उनका ज्ञान कराना है और 'थ' का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करने वाला।"[1]

नाथ परंपरा में आदिनाथ शिव को माना गया है। मानव गुरुओं में मत्स्येंद्रनाथ नाथ परंपरा के प्रथम आचार्य हैं। जो गोरखनाथ के गुरु थे। आचार्य शुक्ल ने गोरखनाथ को चौरासी सिद्धों में गिना है, जिन्होंने वज्रयानियों के अश्लील और वीभत्स विधानों के चलते अपना मार्ग अलग कर लिया। इनकी संख्या नौ थी।[2] ड़ॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोरखनाथ को अपने युग के सबसे बड़े नेता और शंकराचार्य के बाद दूसरे प्रभावशाली और महिमान्वित महापुरुष माना है। उन्होंने अपने उपदेशों को लोकभाषा में प्रचारित किया। हिन्दी साहित्य के संत साहित्य पर नाथों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।[3] गोरखनाथ की रचनाओं की संख्या चालीस मानी जाती है, किन्तु डॉ. बड़थ्वाल ने केवल चौदह रचनाएं ही मानी हैं। उनकी रचनाओं में मन की शुद्धता, गुरु की महिमा, इंद्रियों का संयम, वैराग्य, कुंडलिनी-जागरण, प्राण-साधना, नीति, धर्म

साधना और उपदेशात्मक रचनाओं से ब्रह्म के निरुपण संबंधी भावनाओं का समावेश मिलता है।[4] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ संप्रदाय का हिन्दी साहित्य में महत्त्व बताते हुए कहते है- "नाथ साहित्य ने परवर्ती सन्तों के लिए श्रद्धाचरण प्रधान धर्म की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। जिन सन्त-साधनकों की रचनाओं से हिन्दी साहित्य गौरवान्वित है, उन्हें बहुत कुछ बनी-बनाई भूमि मिली थी।"[5]

गोरखनाथ की नीति और साधना संबंधी प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं-

गोरखनाथ ईश्वर(आत्मा) को सर्वत्र(विद्यामान) व्याप्त मानते है। जिस का न उदय होता है न अंत। उसका न रात है और न दिन। वो सबसे जुड़ा हुआ है। ईश्वर का वास सुक्ष्म और स्थूल सभी ओर व्याप्त है।

"उदै न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन।
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्ब व्यापीक सुषम न अस्थूल।।"[6]

नाथ संप्रदाय में गुरु का परम आवश्यक माना गया है जिसके बिना उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गोरखनाथ "गुरु के बिना शिष्य को निगुणा मानते है।

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुर बिन ग्यंन न पायला रे भाईला।।"[7]

अहंकारी अहंकार से भरा हुआ होने के कारण गुरु की खोज नहीं करता, जिसके कारण उसका शरीरपात हो जाता है और दूसरी ओर गुरु की खोज करने वाला, गुरु की खोज कर जीवन प्राप्त करता है और अमर हो जाता है।

"गुरु की बाचा षोजै नांही, अहंकारी अहंकार करै।
पोजी जीवैं पोजि गुरु कौं, अहंकारी का प्यंड षरै।।"[8]

नाथों ने मन को साधने पर बहुत बल दिया। गोरखनाथ कहते है- अगर मन शुद्ध है तो कठौती में ही गंगा है अर्थात् जहाँ चाहों वही गंगा विद्यामान है। अगर माया के बंधन में पड़े मन अथवा जीव को मुक्त कर दिया तो सारा जगत ही चेला हो जाएगा। गोरथनाथ सत्य स्वरुप का वर्णन करते हैं जो उस परम तत्त्व का विचार करेंगे, वह रूप और रेखा से रहित हो जाएंगे।

"अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा, बांध्या मेल्हा तौ जगत चेला।
बदंत गोरष सति सरुप तत बिचारैं ते रेष न रुप।।"[9]

नाथ संप्रदाय में गृहस्थ जीवन और जगत के प्रति असंतोष भाव रहा है, सांसारिक भोग के प्रति जोगी को उदास रहना चाहिए। संसार को माया कहा है, इनसे मुक्त होकर ही जोगी उस परम तत्त्व, निरंजन को प्राप्त कर सकता है।

"जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास।
तत निरंजण पाइये कहै मछंदरनाथ।।"[10]

व्रत का सामान्य अर्थ है धारण करना। गोरखनाथ जीव को अपने जीवन में शील भाव, संतोष, शमा करना, दया करना, दान-पुण्य करना यह पाँचों साधू में होने चाहिए।

"सील ब्रत संकोप ब्रत, छिमा दया ब्रत दांन।
ये पाचौं ब्रत जो गहै, सोई साध सुजांन।।
इन ब्रतां का जांणौं भेद। आपै करता आपै देव।
मन पवनां लै उनमन रहै। एते ब्रत गोरषनाथ जी कहै।[11]

योगी का रहन- सहन मध्य मार्ग वाला होना चाहिए। उसे भोग और त्याग पर संयम रखना चाहिए। भोग्य पदार्थ उसके सामने भी हो तो उनसे आसक्ति नहीं होनी चाहिए। जो ऐसा संयम कर सके, उसी योगी के भीतर साधना का भँडार बसता है।

"नौ लष पातरि आगैं नाचैं, पीछै सहज अषाड़ा।

ऐसैं मन लै जोगी षेलै, तभ अंतरि बसे भँडारा।।"[12]

नाथ संप्रदाय में परमात्मा का रहस्यवाद के दर्शन होते है। विकारों के भीतर से निर्विकार तत्त्व का साक्षात्कार पा लेना बहुत कठिन कार्य है। योगी यही करता है। अंजन अर्थात विकारों के भीतर निरंजन अर्थात विकारहीन शिव को उसी प्रकार पा लेता है- जैसे तिल में से तेल निकालना। मूर्त जगत के अंदर से अमूर्त परम तत्त्व को पाने पर ही परम आनंद की प्राप्ति होती है। यही परम तत्त्व का खेल है।

"अंजन माहिं निरंजन भेटया, तिल मुय भेटया तेलं।।"

मूरति माहिं अमूरति परस्या, भया निरंतरि खेलं।।"[13]

अध्यात्म में जीव के आवा गमण की बात कही जाती है। गोरखनाथ इसके बारे में कहते है कि यह सब भ्रम है, बहुत से पंथों, महापुरुषों ने बताया है। लेकिन जीव के अन्दर चलने वाला अनहद शब्द का जब हमें पता चलता है तो परम तत्त्व को महसूस करते है यह शब्द रुपी धुनि जीव के शरीर में ही वास करती है। जब इस शब्द का पता चला तो अपने में ही उस परम के दर्शन हो गए और आवा गमन का धोखा दूर हो गया।

"आवा गवण भरम का मारग, पुरुषां पंथ बताया।

सबद अतीत अनाहद बोलै, अंतरि गीत समाया।।"[14]

"अनहद धुनि मैं रहनि हमारी निवास है। तत्व का देखि मन लागा।

आपा माहीं आपा प्रकटया, जब जाय धोषा भागा।[15]

नाथ संप्रदाय में अपने भीतर ही आत्मा के होने पर बहुत महत्त्व दिया गया है, इस बारे में गोरखनाथ कहते है कि परमात्मा को बाहर ढूढने की जरूरत नहीं, वह हसारे ही अन्दर है। जिस प्रकार दर्पण और जल में हमारी ही शवि दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार परमात्मा का लिए बाहर भटकने की जरूरत नहीं। परमात्मा जीव का शरीर में इस भांति विद्यामान है लेकिन दिखाई गुरु की कृपा से ही पड़ता है जैसे- अगनि में चमक के समान, दूध में मखन होता है।

"दरपन माही दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांई।

आपा मांही आपा प्रगटया, लखै तो दूर न जाई।।

चकमक ठरकै अगनि झरै यूं, दध मधि घृघ करि लीया।

आपा मांही आपा प्रगटया, तब गुरु सन्देसा दीया।।"[16]

नाथ संप्रदाय में शब्द को बहुत महत्त्व दिया गया है। गोरखनाथ कहते है- शब्द ही ताला है, वही परमतत्त्व को अपने भीतर बन्द किए रहता है। शब्द ही वह कुंजी है जिसके द्वारा शब्द रुपी ताला खोल कर उस परमतत्त्व तक पहुँचा जा सकता है। गुरु की कृपा से शब्द को अन्दर से जगाया जा सकता है। उसी शब्द का पसारा सभी ओर है और सब कुछ शब्द में ही समाया हुआ है।

"सबदहि ताला सबदहि कूची सबदहि सबद भया उजियाला।

कांटा सेती कांटा पूटै कूंची सेती ताला।।"[17]

भक्तिकाल में जाप, सिमरण पर बल का महत्त्व नाथ साहित्य की देन है, गोरखनाथ इस बारे में कहते है- मन लगा कर ऐसा जाप करो, सोहं-सोहं की वाणी का उपयोग किए बिना ही अपने आप उसका गान हो जाए

"ऐसा जाप जपौ मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई।[18]

एक ही ईश्वर का पसारा, उसी से सब जीवों का उत्त्पत्ति का सिद्धांत वैदिक काल से ही भारतीय आध्यात्मिक विचारधारा में चलता आ रहा है। इस के बारे में गोरखनाथ कहते है कि एक में ही अनंत है और अनंत में ही एक की मौजूदगी है। एक से ही सारे संसार की रचना हुई है, सारा संसार उसी एक से पैदा होता है और उसी एक में समा जाता है-

"एक मैं अनंत अनंत मैं एकै, एकै अनंत उपाया।
अंतरि एक सौं परचा हुवा, तब अनत एक मै समाया।।"[19]

नाथों ने योग साधना का विकास किया। हठ योग द्वारा इंन्द्रियों पर कर परम तत्त्व का प्राप्ति की बात कहीं। इस शरीर में गोरखनाथ ने गोता लगाने की बात की है क्योंकि शरीर के भीतर ही पंच कटार अर्थात मन मौजूद है। मन के कारण जीव बेहाल हो जाता है यह पहेली गुरु कृपा से ही पता चलती है। गुरु को शीश झुकाना चाहिए। विद्या पढ़े हुए को ज्ञानी और विद्या न पढ़े को पंडित अज्ञानी कहते है। लेकिन परम तत्त्व परमात्मा को कोई ब्रह्मज्ञानी ही जान सकता है।

"इस ओजुदा मैं मारि लै गोना, कछु मगज भीतरि ष्याल रै।
पंच कटार है भीतरि, निमस करि बेहाल रै।।"[20]
अबूझि बूझिलै हो पंडिता अकथ कथिलै कहाणी।
सीस नवांवत सतगुर मिलीया जागत रैणा बिहांणी।।"
विद्या पढ़ि र कहावै ग्यंनी। बिनां अविद्या कहै अग्यांनी।
परम तत का होय न मरमी। गोरष कहै ते महा अधरमी।।"[21]

नाथों ने मांस, नशों का विरोध किया है और इसके सेवन अनुचित माना है। मांस और नशों का सेवन करने वाले सदा नरक के भागिदार बनते है।

"अवधू मांस भषन्त दया धरम का नाम।मद पीवत तहां प्रांण निरास।।"
भंगि भषंत ग्यंन ध्यंन षोवंत। जम दरबारी त प्राणी रेवंत।।"[22]

योगी धन, जवानी, नारी की चित्त में आशा नहीं करता। आत्म संयम रखने वाला पुरूष ही साक्षात परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। नाद(वाणी) और बिन्दु(वीर्य) को संयमित रखने वाला पुरूष साक्षात शिव का रूप हो जाता है। नाथ संप्रदाय में ब्रह्मचर्यमय जीवन को आदर्श माना गया है।

"धन जोबन की करै न आस, चित्त नाराषै कांमिनि पास।
नाद बिन्दु जाकें घटि नरै, ताकी सेवा पारवती करै।।"[23]

निष्कर्ष; नाथ संप्रदाय ने तत्कालीन जनता को कर्मकाण्ड का कड़ी से मुक्त कर एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया और मानव जीवन में सदाचार, नैतिकता, संयम, मानसिक पवित्रता के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया। नाथों का प्रभाव कबीर आदि संतों की वाणी और परवर्ती साहित्य पर पड़ा।

सहायक पुस्तकें-

1. नाथ साहित्य, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 3
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 9
3. वही पृष्ठ- 11
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ.नगेन्द्र, डॉ.हरदयाल, पृष्ठ 63
5. नाथ साहित्य, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 183
6. गोरख- बानी, डॉ.पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ- 39
7. वही पृष्ठ- 128
8. वही पृष्ठ- 52
9. वही पृष्ठ- 53
10. वही पृष्ठ- 53
11. वही पृष्ठ- 245

12. वही पृष्ठ- 217
13. वही पृष्ठ- 218
14. वही पृष्ठ- 219
15. वही पृष्ठ- 217
16. वही पृष्ठ- 208
17. वही पृष्ठ- 207
18. वही पृष्ठ- 124
19. वही पृष्ठ- 103
20. वही पृष्ठ- 75
21. वही पृष्ठ- 72
22. वही पृष्ठ- 57
23. वही पृष्ठ- 7

•